इकाई 10 एम. एन. श्रीनिवास *

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 जीवन परिचय

10.3 मुख्य विचार

- 10.3.1 संरचनात्मक प्रकार्यवाद
- 10.3.2 समाजशास्त्रीय अध्ययन में 'अन्य'
- 10.3.3 पाठ विषय दृष्टिकोण बनाम क्षेत्र परक दृष्टिकोण
- 10.3.4 भारत में गाँव
- 10.3.5 जाति
- 10.3.6 सामाजिक गतिशीलता
- 10.3.7 सामुदायिक विकास और राष्ट्र–निर्माण

10.4 महत्वपूर्ण कृतियाँ

10.5 सारांश

10.6 संदर्भ

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- एम.एन. श्रीनिवास का संक्षिप्त जीवन परिचय प्रस्तुत कर सकें;
- एम.एन. श्रीनिवास के मुख्य विचारों पर चर्चा कर सकें; तथा
- एम.एन. श्रीनिवास की महत्वपूर्ण कृतियों को सूचीबद्ध कर सकें।

10.1 प्रस्तावना

श्रीनिवास के व्याख्यान व लेखन ने समाजशास्त्रियों व मानवविज्ञानियों की अनेक पीढ़ियों को प्रभावित किया है। भारतीय समाज के प्रपथ विषयक उनकी समुक्तियाँ एवं पूर्वानुमान अपने प्रकाशन के अनेक वर्षों बाद नई प्रासंगिकता ग्रहण करते प्रतीत होते हैं। श्रीनिवास की गहन एवं सटीक अध्ययन–सामग्री ऐसे व्यापक अनुमानों के साथ सामने आई है जो अनिश्चितता एवं परिवर्तन के इस युग में भी जीवन के अनेक पहलुओं पर लागू होते हैं।

इस इकाई का आरंभ हम एम.एन. श्रीनिवास के विचारों को प्रभावित करने वाली सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बोध के साथ करेंगे और फिर उनकी प्रमुख अवधारणाओं का सूक्ष्म अध्ययन करेंगे। तदोपरांत हम उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियों को सूचीबद्ध करेंगे।

* प्रो. नीता माथुर, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली कृत।

10.2 जीवन परिचय

मैसूर नरसिंहाचार श्रीनिवास का जन्म 16 नवंबर, 1916 को मैसूर शहर के नरसिंहाचार नामक एक पारंपरिक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता अरकेरे नामक गाँव से यहाँ आए थे, जो कि मैसूर शहर से लगभग 20 मील दूर स्थित है। वह यहाँ सरकारी नौकरी में थे। गाँव छोड़ने की दूसरी वजह अपने बच्चों को शिक्षा उपलब्ध कराना भी था।

उपर्युक्त से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि श्रीनिवास का परिवार शिक्षा को बहुत महत्व देता था। उनके सबसे बड़े भाई पहले एक स्कूल में शिक्षक के रूप में अंग्रेजी पढ़ाते थे और फिर मैसूर विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के सहायक प्रोफेसर हो गए थे। उन्होंने ही श्रीनिवास से अपना लेखन कौशल सुधारने का आग्रह किया था। अपना लेखन कौशल सुधारने का एक अन्य तरीका जो उन्होंने अपनाया, वह था – अपनी पांडुलिपियों को सम्पादन के लिए आर.के. नारायण – सुप्रसिद्ध उपन्यासकार – को देना।

श्रीनिवास के बौद्धिक विचारों को आकार उन तीन विश्वविद्यालयों में दिया गया जहाँ उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। इनमें प्रथम था – मैसूर विश्वविद्यालय, जहाँ उन्होंने ए.आर. वाडिया और एम.एच. कृष्णा के संरक्षण में सामाजिक दर्शन का अध्ययन किया; दूसरा था – बम्बई विश्वविद्यालय, जहाँ उन्हें जी.एस. घुर्ये द्वारा शिक्षा द्वारा शिक्षा प्रदान की गई; तथा तीसरा था – ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, जहाँ उन्हें ए.आर. रैडक्लिफ–ब्राउन और ई.ई. इवांस–प्रिचर्ड से प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। स्नातकोत्तर स्तर पर श्रीनिवास ने जी.एस. घुर्ये के सानिध्य एवं मार्गदर्शन में शिक्षा प्राप्त की।

घुर्ये द्वारा प्रोत्सहित किए जाने पर ही उन्होंने मैसूर राज्य में रहने वाली कन्नड़ जाति में विवाह एवं परिवार पर एक संक्षिप्त क्षेत्र–आधारित अध्ययन संचालित किया। इसी अध्ययन को एक शोध–प्रबंध के रूप में प्रस्तुत कर तदंतर उन्होंने इसे *मैरिज एंड फेमिली इन मैसूर* (1942) नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाया। ऑक्सफोर्ड में रहकर उन्होंने डी.फिल उपाधि कार्यक्रम के तहत अपना शोध–कार्य रैडक्लिफ–ब्राउन की देखरेख में किया। उन्हीं के सुझाव पर श्रीनिवास ने संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम का प्रयोग कर कूर्ग विषयक सामग्री का पुनरावलोकन किया।

फुलर (1999: 5) के साथ अपने एक साक्षात्कार के दौरान श्रीनिवास ने यह खुलासा किया – 'किसी न किसी प्रकार, अक्तूबर '45 और अक्तूबर '46 के बीच मैं अपने शोध–प्रबंध की संरचना तैयार कर चुका था और इसके लिए मैंने विशेष रूप से धार्मिक–संस्कार शैली पर रैडक्लिफ–ब्राउन से विचार–विमर्श किया था। यही वह समय था जब मैंने उनके साथ संरचना तैयार करने के लिए शुद्धता व मलिनिता पर चर्चा की थी, और कूर्ग विवाह के विश्लेषणार्थ 'अण्डमान द्वीपवासियों' के पास गया था, जो कि मेरे लिए बहुत मददगार रहा था। मैंने उनके साथ कूर्ग धार्मिक संस्कारों के उन समूहों, ओक्का (संयुक्त परिवार) एवं गाँव आदि से संबंध पर चर्चा की... 'प्रसार की समस्त योजना के लिए भी मैं आर–बी (रैडक्लिफ–ब्राउन) का ऋणी हूँ – संस्कृतीकरण एवं पश्चिमीकरण संबंधी विचार उपलब्ध सामग्री से ही आए थे, ये दोनों उन पर थोपे नहीं गए थे।' तदंतर वर्ष 1946 में जब रैडक्लिफ–ब्राउन ऑक्सफोर्ड छोड़कर चले गए तो उन्होंने ई.ई. इवांस–प्रिचर्ड के साथ अपना कार्य जारी रखा। उनका यह शोध–कार्य *रिलीजन एंड सोसाइटी अमंग द कूर्ग्स ऑफ साउथ इंडिया* नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ।

वर्ष 1951 में श्रीनिवास भारत लौट आए। यहाँ आकर उन्होंने बड़ौदा विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग की स्थापना की।

बॉक्स 10.1: ऑक्सफोर्ड और बड़ौदा के बीच तुलना

ए.एम. शाह (2000: 629) के साथ अपने साक्षात्कार के दौरान श्रीनिवास कहते हैं – 'सर्वप्रथम' जब मैं पश्चिमी यूरोप स्थित एक प्राचीनतम विश्वविद्यालय से मात्र दो वर्ष पूर्व ही अस्तित्व में आए बड़ौदा विश्वविद्यालय में आया तो मुझे इस बात का कतई अंदाजा नहीं था कि किस प्रकार की स्थिति मेरे समक्ष प्रस्तुत होगी। ऑक्सफोर्ड और बड़ौदा के बीच इससे बड़ा अंतर और क्या होगा? अपने बड़ौदा प्रवास के दौरान प्रथम वर्ष तो मैं एक प्रकार से हक्का–बक्का हुआ यही सोचा करता कि मैंने स्वयं को यहाँ क्यूँकर आने दिया। कभी–कभी मुझे यह आभास होता था कि मेरे आसपास के लोग विश्वविद्यालय स्थापित करने का खेल खेल रहे हैं। मुझे फिर ऑक्सफोर्ड की याद सताने लगी, जहाँ शिक्षण परंपराएँ सदियों पुरानी थीं। बहरहाल, मेरे अंतर्मन में यह बोध था कि मुझे अपनी नौकरी में सफल होना ही होगा क्योंकि मैं भारत में ही रहना चाहता था'।

वर्ष 1959 में श्रीनिवास को दिल्ली विश्वविद्यालय स्थित दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में समाजशास्त्र के नवस्थापित अध्यक्ष पद हेतु आमंत्रण मिला। वर्ष 1966 और 1969 के बीच वह इंडियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी (ISS) के अध्यक्ष रहे। इस संस्था की पत्रिका सोशियोलॉजिकल बुलेटिन को उन्होंने फिर से शुरू किया वर्ष 1972 में वह अपने गृह राज्य कर्नाटक लौट आए। उन्होंने नवस्थापित सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन संस्थान (ISEC) में संयुक्त निदेशक का पदभार सँभाला। उनका मुख्य उद्देश्य दक्षिण भारत में समाजशास्त्र का स्तर बढ़ाना था (शाह, 1996)। सात वर्ष बाद इस संस्था से सेवानिवृत्त हो वह बंगलौर स्थित नेशनल इंस्टीच्यूट फॉर एडंवास स्टडीज (NIAS) की सेवा में आ गए। अंततः 30 नवंबर, 1999 को उनका देहांत हो गया।

10.3 मुख्य विचार

एम.एन. श्रीनिवास को समाजशास्त्रीय अनुसंधान की विधियों एवं संभावनाओं, भारत में गाँवों, जाति, राष्ट्र–निर्माण व अन्य कई विषयों पर उनके लेखन के लिए जाना जाता है। आगे हम उनके कुछ प्रमुख विचारों पर चर्चा करेंगे।

10.3.1 संरचनात्मक प्रकार्यवाद

श्रीनिवास को सामाजिक संरचना की अवधारणा का ज्ञान रैडक्लिफ–ब्राउन से प्राप्त हुआ। तदंतर वे सामाजिक जीवन के अध्ययन में इसके महत्व के प्रति आश्वस्त हो गए। उनके कार्य का अधीक्षण ए.आर. रैडक्लिफ–ब्राउन के अलावा ई.ई. इवांस–प्रिचर्ड द्वारा भी किया गया था। ऐसा तब हुआ जब रैडक्लिफ–ब्राउन सेवानिवृत्त हुए और इवांस–प्रिचर्ड ने पदभार सँभाला। इस तथ्य के बावजूद कि इवांस–प्रिचर्ड ने श्रीनिवास के मूल दृष्टिकोण को दुर्खीम पर अनुचित रूप से निर्भर माना था, जो कि उन्हें अवांछनीय लगता था, वह उनके काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे। जबकि रैडिक्लिफ–ब्राउन ने उनके दृष्टिकोण को आकार प्रदान किया था, इवांस–प्रिचर्ड ने उनकी दूरदर्शिता को प्रेरित किया था।

रैडक्लिफ–ब्राउन और इवांस–प्रिचर्ड के साथ श्रीनिवास की काम में व्यस्त रहने की स्थिति ने उनके बौद्धिक विचारों में सुस्पष्टता ला दी थी। पूर्ववर्ती द्वारा संरचनात्मक प्रकार्यवाद और सामाजिक नृविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान माने जाने को परवर्ती द्वारा चुनौती दी गई (1951)। इवांस–प्रिचर्ड ने रैडक्लिफ–ब्राउन की इस अवधारणा की आलोचना की कि समाज प्राकृतिक निकायों की भाँति होते हैं, जो कि नियमों से नियंत्रित होते हैं। इसकी बजाय, उन्होंने प्रस्थापित किया कि सामाजिक यथार्थ को समझने में विवेचनाओं का महत्व कहीं अधिक होता है। इसके अलावा, इवांस–प्रिचर्ड का कहना था कि सामाजिक जीवन के समग्र बोध हेतु ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य अनिवार्य होता है।

उन्हीं के अनुकरण में श्रीनिवास ने समग्र समष्टि के संबंध में सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन की प्रकार्यवादी अवधारणा का पालन किया।

श्रीनिवास रैडक्लिफ–ब्राउन के संरचनात्मक प्रकार्यवाद संबंधी दृष्टिकोण से सहमत थे। तथापि उन्होंने स्वीकार किया कि वर्ष 1951 में ऑक्सफोर्ड से स्नातक होने के समय तक उनका दृष्टिकोण बदल गया था। उन्होंने सभ्यता की प्रकार्यात्मकता में ऐतिहासिक साक्ष्य के महत्व को अनुभव किया। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि सामाजिक नियमों की तुलना वैज्ञानिक नियमों से करना व्यर्थ है। तदंतर उन्होंने सामाजिक व्यवहार में ऐतिहासिक आँकड़ों की आवश्यकता तथा संरचनात्मक प्रकार्यवाद में अंतर्निहित सिद्धांतों की निरर्थकता को मान्यता देना शुरू कर दिया। श्रीनिवास ने स्वयं को संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक विधि तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने प्रसंगों के भीतर और उनसे परे जाकर अर्थ खोजने का प्रयास किया। उन्होंने प्रभावी जाति, संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण जैसी प्रमुख सामाजिक स्थितियों एवं प्रक्रियाओं के विश्लेषण के दौरान उन्हीं अर्थों का समावेश करने का प्रयास किया (खरे, 1996)।

श्रीनिवास के अनुसार, भारतीय समाज में कृषिक संघर्ष, असमानता, जातीयता, सांप्रदायिकता और क्षेत्रवाद जैसी समस्याओं को उन अंतर्संबंधों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जो उन्हें जीवन के अन्य पहलुओं से जोड़ते हैं। यही दृष्टिकोण राजनीतिज्ञों और प्रशासकों को समस्याएँ हल करने हेतु अनेक विकल्प देख पाने में सक्षम करेगा। श्रीनिवास ने किसी भी समाज की समस्याओं, प्रक्रियाओं एवं संस्थाओं की नियमित तुलना प्रथम चरण में पड़ोसी देशों से और दूसरे चरण में विकासशील देशों से किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

10.3.2 समाजशास्त्रीय अध्ययन में 'अन्य'

मानवशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों को प्रायः ऐसा लगता है कि उन्हें अपनी संस्कृति की बजाय 'अन्य' संस्कृतियों का अध्ययन करना चाहिए। इसके पीछे दो कारण माने जा सकते हैं – एक, अपनी संस्कृति से अंतरंगता की वजह से उसके कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं की उपेक्षा हो सकती है; और दूसरा, शोधकर्ता के स्वयं का पूर्वाग्रह शोध–कार्य को प्रभावित कर सकता है। श्रीनिवास देश भर में जीवनशैलियों की विविधता और उनके सह–अस्तित्व से अवगत थे। इसी कारण उन्होंने मानवशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन में 'अन्य' की अवधारणा की पुनर्व्याख्या की। श्रीनिवास कहते हैं, 'भारतीय मानवशास्त्रियों को क्षण–क्षण भाषा, बोली, धर्म, संप्रदाय, जाति, वर्ग और प्रजाति संबंधी भिन्नताओं का सामना करना पड़ता है ताकि वे 'अन्य' को समीपवर्ती गाँव, जनजाति अथवा पिछड़ी मलिन बस्ती में तलाश सकें' (देखें शाह, 2000: 634)।

श्रीनिवास का मानना है कि मानवशास्त्रीय तकनीक को अपने स्वयं के परिवार एवं जीवन के अध्ययन तक विस्तार दिया जाना चाहिए। लेखक अपने जीवन के शुरुआती वर्षों से ही लोगों की जीवनशैलियों में परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील था। अतः वह बचपन में कॉलेज रोड और बंडीकेरी क्षेत्रों में घूमा करता था। कॉलेज रोड क्षेत्र में दक्षिण भारत के विभिन्न भागों से आए ब्राह्मणों का वर्चस्व था, जबकि बंडीकेरी के आसपास कुरुबा लोगों का प्रभुत्व था, जो कि जाति से गड़रिए/बुनकर थे (शाह, 1996)।

कॉलेज रोड और बंडीकेरी के निवासियों की अनेकरूपता ने श्रीनिवास को सांस्कृतिक भिन्नता के प्रति उनके प्रथम अनुभव से दो–चार कराया। लेखक ने दक्षिण भारत में रामपुरा गाँवड़ी और कूर्ग क्षेत्र के अनुसंधान में बहुत समय बिताया। अपने स्वयं के समाज का अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्री से सभी उपलब्ध नैतिक एवं बौद्धिक संसाधनों के

उपभोग की अपेक्षा की जाती है। जातीय, क्षेत्रीय, भाषाई एवं धार्मिक विविधता के साथ देश के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रवास से भारतीय संस्कृति निश्चय ही समृद्ध हुई है।

बोध प्रश्न 1

1. रैडक्लिफ–ब्राउन के सरंचनात्मक–प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की समालोचना का संक्षेप में वर्णन करें।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. भारतीय मानवशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों द्वारा अपने स्वयं के समाज का अध्ययन किए जाने के औचित्य को स्पष्ट करें।

   .....

   .....

   .....

   .....

10.3.3 पाठ विषय दृष्टिकोण बनाम क्षेत्र परक दृष्टिकोण

श्रीनिवास की उत्कट इच्छा थी कि वह समाज के पाठ विषय दृष्टिकोण (धार्मिक साहित्य एवं भारत–विद्या विषयक परिप्रेक्ष्य पर आधारित) तथा भारतीय संदर्भ में समाज के क्षेत्र परक दृष्टिकोण (गहन क्षेत्रीय अध्ययन एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रेरित) के बीच अंतर स्पष्ट करें। पुस्तकें भारत में लोगों के जीवन का एक अपरिहार्य अंग रही हैं। पुस्तकों ने ही मानदंड प्रदान किए और नियामक आचार–संहिता प्रस्तुत की। शहरी क्षेत्रों में मानदंड एवं नियामक आचार–संहिता शासकों द्वारा लागू किए गए। ग्रामीण क्षेत्रों में, बहरहाल, प्रभुत्व जातियों अथवा विशिष्ट जातियों की परिषदों द्वारा मानदंड एवं नियामक आचार–संहिता लागू किए गए। उल्लेखनीय सांस्कृतिक विविधता न केवल क्षेत्रों के बीच, बल्कि जातियों एवं जातीय समूहों के भीतर भी विद्यमान है। श्रीनिवास ने समाज के पाठ विषय अर्थात् किताबी दृष्टिकोण और समाज के क्षेत्र परक अर्थात् हकीकी दृष्टिकोण के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर देखा। वास्तव में इन्हीं दोनों के बीच भेद ने ही एक अनूठा दृ ष्टिकोण यह समझने के लिए प्रदान किया कि जाति किस प्रकार समय के साथ सामाजिक संबंधों को नियंत्रित करती है। जबकि श्रीनिवास भारतीय समाज एवं संस्कृति के अध्ययन हेतु क्षेत्र परक दृष्टिकोण का महत्व सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे, लूइस ड्यूमॉन्ट की पुस्तक *होमो हायरारकिकस* (1970) ने अकादमिक क्षेत्र में पाठ विषय दृष्टिकोण से परिचय कराया। इसका प्रभाव इतना अधिक देखने में आया कि अनेक समाजशास्त्रियों के लिए क्षेत्र परक दृष्टिकोण की तुलना में पाठ विषय दृष्टिकोण का महत्व अधिक हो गया।

10.3.4 भारत में गाँव

श्रीनिवास का मानना था कि ग्राम अध्ययन ही भारतीय समाज, संस्कृति एवं सभ्यता के विषय में जानने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। यही शोध–कार्य सामाजिक नृविज्ञान में जनजातीय अध्ययन से कृषकों की जीवनशैलियों, सामाजिक आंदोलनों एवं सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन की ओर चले जाने पर जोर देने का संकेत देते हैं। श्रीनिवास ने गाँवों की यथार्थपरक व्याख्या में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आरंभ में उन्होंने भारत में गाँवों के परिवेश

में मिथकों का भंडाफोड़ किया। 'सिलेक्ट कमेटी ऑन द अफेयर्स ऑफ दि ईस्ट इंडिया कम्पनी' की पाँचवीं रिपोर्ट में गाँव को एक लघु समाज के रूप में एक निश्चल, निष्क्रिय और अपरिवर्ती इकाई माना गया। श्रीनिवास ने भारतीय गाँवों की वास्तविकता को सामने रख इस अत्यधिक एकांगी दृष्टिकोण का विरोध किया। उन्होंने असमानता, रोग एवं निरक्षता के साथ–साथ ग्राम्य संसाधनों पर भी प्रकाश डाला। लेखक ने इस बात को सामने रखा कि समतावादी होने की बजाय गाँव पदानुक्रम और राजनीति के प्रभाव से संचालित होते हैं। उसने नीति–निर्माताओं के मस्तिष्क में गाँवों में साक्षात वास्तविकता और दृष्ट एवं कल्पित वास्तविकता के बीच अंतर की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

श्रीनिवास (1975) ने गाँव एवं राज्य के बीच नियमित अथवा निरंतर संबंधों के साथ–साथ संपर्क के वैयक्तिक अवसरों का भी वर्णन करते हुए ग्राम्य जीवन के आव्यूह में आत्मरक्षा, सामूहिक संघर्ष एवं स्थानीय शासन की भूमिका पर बल दिया। पूर्व–ब्रिटिश काल में राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों कारक संयुक्त रूप से राजनीतिक सीमाओं से परे दिशांत संबंध कायम करने में बाधा उत्पन्न करते थे।

राजनीतिक सीमाओं से परे लोगों का एक साथ जाना हर व्यक्ति के लिए सरल नहीं था, विशेषकर निम्न जाति के लोगों के लिए। इसके अलावा, राजनीतिक रूप से महत्वाकांक्षी संरक्षक अपने स्थानीय समर्थक बनाकर उन्हें जोड़कर रखने का यत्न किया करते थे। इसके लिए उन्हें समर्थकों को खिलाना–पिलाना पड़ता था, विशेषकर विवाह एवं अंतिम संस्कार के अवसरों पर। उन्हें आवश्यकतानुसार ऋण व अन्य सहायता भी देनी पड़ती थी। वह नेता जो अपने काश्तकारों व श्रमिकों को खाद्यान्न दान अथवा उधार देता था, अपनी साख बना लेता था और फिर जनसामान्य का समर्थन भी सुनिश्चित कर लेता था। पुनश्च, ग्राम्य जीवन की गतिकी को मालिक–मजदूर और संरक्षक–ग्राहक संबंधों में रूपावित व्यवस्था के माध्यम से भूल–भुलैया द्वारा परिभाषित किया जाता है। जब श्रम दुर्लभ था तो समाज 'उत्पादन पिरामिडों' की एक श्रृंखला में विभाजित हो गया था, जिनमें शीर्ष पर जमींदार, उसके नीचे कारीगर एवं सेवा जातियाँ तथा सबसे नीचे भूमिहीन श्रमिक होते थे। संरक्षकों के बीच विवाद एवं प्रतिद्वंद्विता संस्थागत संबंधों से और गाँव पर संकट समाज द्वारा नियंत्रित किए जाते थे। ऐसे प्रसंग में राजनीतिक सत्ता संस्थागत व्यवस्था से समझौता वार्ता करके ही हासिल की जा सकती थी।

10.3.5 जाति

श्रीनिवास ने सामाजिक बंधन प्रबंधन में जाति के महत्व पर चर्चा की। इसे पहले रामपुरा मलिन बस्ती की विशिष्ट पृष्ठभूमि में और फिर भारतीय उपमहाद्वीप के वृहत्तर प्रसंग में सोदाहरण प्रस्तुत किया गया। जाति विषयक ड्यूमॉन्ट के विचारों की अपनी समीक्षा में लेखक ने जाति को स्वदेशी के रूप में प्रस्तुत करते हुए पश्चिमी 'सामाजिक–केन्द्रवाद को एक भारतीय सामाजिक संस्था' में ढालने को लक्ष्य बनाया। मौलिक परिप्रेक्ष्य उत्क्षेप के दूरगामी परिणाम हुए हैं।

श्रीनिवास (1957, 1984) ने सिद्ध किया कि जाति पदानुक्रम कठोर सामाजिक स्तरीकरण के ऐसे अनेक रूपों में से एक है जो वैयक्तिकता के प्रति विरोधाभासी हैं। ऐतिहासिक रूप से विभिन्न जातियों के बीच जबरदस्त संबंध रहा है। एक जाति के सदस्य अन्य जातियों के सदस्यों द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं पर निर्भर रहते थे। एक जाति के लोग दूसरी जातियों द्वारा दी जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए प्रतिस्पर्धा करते थे, जिसके परिणामस्वरूप कभी–कभी संघर्ष छिड़ जाता था। रामपुरा गाँव में कृषकों की संख्या सर्वाधिक थी। उन्हीं के पास गाँव की अधिकांश भूमि थी। गाँव का मुखिया भी एक किसान ही था। इन सब बातों ने गाँव में उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को सबसे मजबूत बना दिया था। ब्राह्मण और लिंगायत भी इस तथ्य के बावजूद उनका

आदर करते थे कि कृषक शूद्र वर्ण के थे। केवल धार्मिक संस्कार के क्षेत्र में ब्राह्मणों और लिंगायतों का प्रभुत्व रहा। जीवन के अन्य आयामों में सहयोग के लिए वे कृषक वर्ग पर ही निर्भर रहे। यह तथ्य बड़ा ही रोचक है कि उच्च जाति के लोगों और अछूतों के बीच विवाद भी ये किसान ही निपटाते थे। आप यह तो जानते ही होंगे कि पंच निर्णय गाँव में सबसे प्रभावशाली लोगों से ही प्राप्त किया जाता है।

रामपुरा शोध–कार्य ने ही श्रीनिवास को प्रभुत्व जाति की आवधारणा विकसित करने के लिए प्रेरित किया। उनके अपने शब्दों में, 'किसी भी जाति को तब 'प्रभुत्व' कहा जा सकता है जब वह अन्य जातियों पर संख्यात्मक रूप से प्रबल हो, और जब वह प्रबल आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति का प्रयोग भी करती हो। कोई भी बड़ा व शक्तिशाली जाति–समूह सरलता से अधिक प्रभावी हो सकता है यदि स्थानीय जाति पदानुक्रम में उसकी स्थिति अत्यधिक निम्न न हो' (1976, 2002: 75 से उद्धृत)।

एक अन्य कारक जो प्रभुत्व निर्धारित करने में महत्वपूर्ण रहा है, वह है शिक्षित पुरुषों की संख्या व उनका व्यवसाय। प्रायः पाश्चात्य एवं परंपरागत शिक्षा प्रभुत्व को निर्धारित करती है। अतः श्रीनिवास इस पाश्चात्य शिक्षा का संदर्भ देते हैं। लोगों की सामान्य आकांक्षा अपने जाति–समूह के युवा सदस्यों को शिक्षित करने की और फिर सरकारी कार्यालयों में नौकरी दिलाने की होती है।

जब विभिन्न गाँवों में किसी जाति की स्थिति बदलती है तो निम्न स्थिति वाले लोग गाँव के बेहतर स्थिति वाले लोगों के साथ अपनी जान–पहचान कायम करने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार स्थानीय पदानुक्रम में आगे बढ़ते हैं। शासक जाति के लोग सामाजिक सुरक्षा में आनंद लेते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उन्हें उन लोगों द्वारा अपमानित अथवा तिरस्कृत नहीं किया जाएगा जो उनसे श्रेष्ठ हैं। ऐसे हृष्ट–पुष्ट पुरुषों की विद्यमानता जो कि युयुत्सु हों, उनकी पदस्थिति एवं सुरक्षा सुदृढ़ करती है।

भारत में ग्रामीण समाज को समझने के लिए स्थानीय रूप से प्रभावशाली जाति और उसे 'किस प्रकार का प्रभुत्व प्राप्त है' संबंधी अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। श्रीनिवास के अनुसार, प्रभुत्व के सर्वाधिक अनिवार्य अभिलक्षण संख्यात्मक शक्ति, आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति, व्यावहारिक प्रस्थिति तथा पश्चिमी शिक्षा एवं व्यवसाय हैं। किसी भी समुदाय में सत्ता के विभिन्न निर्धारक तत्व आमतौर पर भिन्न–भिन्न जातियों में वितरित होते हैं। किसी भी जाति को प्रभुत्व तब माना जाता है जब उसमें प्रभुत्व के सभी अथवा अधिकांश तत्व विद्यमान हों।

10.3.6 सामाजिक गतिशीलता

श्रीनिवास (1968) जाति प्राधार के भीतर गतिशीलता पर बल देते हैं। वह पूर्व–ब्रिटिश युग में गतिशीलता के दो स्रोतों का उल्लेख करते हैं, यथा राजनीतिक व्यवस्था में सुनम्यता, विशेषकर निम्न स्तरों पर, तथा ऐसी सीमांत भूमि की उपलब्धता जो खेती–योग्य हो। ब्रिटिश शासन से पूर्व राजनीतिक सत्ता आमतौर पर शक्तिशाली जातियों के नेताओं द्वारा हथिया ली जाती थी, जो कि लड़ाइयाँ लड़ सकते और प्रायः राजा बदल दिया करते थे। उनकी संख्या का नितांत आकार तथा भूमि के स्वामित्व से प्राप्त प्रस्थिति एवं शक्ति उन्हें राजनीतिक सत्ता हासिल कर लेने के लिए एक दृढ़ स्थिति में ला देती थी। क्षत्रिय वर्ण अनेक जातियों से मिलकर बना था। इस वर्ण का अंग बनी प्रत्येक जाति के पास राजनीतिक सत्ता होती थी। यही कारण था कि जब किसी प्रभावशाली जाति का नेता शासक के पद तक पहुँचता था, वह क्षत्रिय की प्रस्थिति हासिल कर लेता था। वह दूसरों को प्रेरणा प्रदान करता था और अन्य सभी के लिए गतिशीलता का स्रोत बनकर उभरता था। बेन्स (1912) के अनुसार, राजा के लिए एक विशिष्ट संख्या में ब्राह्मणों की सेवाएँ

प्राप्त करना अनिवार्य होता था। ऐसा राजा जो ब्राह्मण की वांछित संख्या अपने सेवा में नहीं दर्शाता था, किसी निम्न जाति के लोगों को ही ब्राह्मणों की प्रस्थिति तक पहुँचा देता था।

ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप देश में गतिशीलता के नए स्रोत उभरे। श्रीनिवास (1968) के अनुसार, अंग्रेजों ने तत्कालीन भारत में गतिशीलता के प्रमुख स्रोतों के रूप में निम्नलिखित कार्यों को आगे बढ़ाया –

i) बंदरगाह शहरों व राजधानियों में भू–स्वामित्व एवं आर्थिक अवसरों की अवधारणा। इसने सभी जातियों के लोगों को भूमि खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया। आर्थिक संकट के समय शहरों में रहने वाले उच्च जातियों के लोग अपनी जमीन गाँव में रहने वाले किसानों व अन्य जातियों के लोगों को बेच दिया करते थे। भूमि का स्वामित्व मिलने से इन लोगों को प्रतिष्ठा एवं प्रस्थिति प्राप्त हो जाती थी।

ii) गतिशीलता के साथ नए मूल्य, समानता को केंद्र में रखते हुए अपने अधिकारों का दावा तथा आधुनिक ज्ञान के साथ अपनी धार्मिक निष्ठा के अनुपालन की स्वतंत्रता। नए–नए पश्चिमी रंग में रँगे भारतीयों ने समाज सुधार हेतु कमर कस ली। मिशनरी मत प्रचार की संस्था ने अस्पृश्यता, पशु बलि, मूर्तिपूजा, विस्तृत अनुष्ठान, बहुदेववाद, बहुविवाह, बाल विवाह व ऐसी अन्य प्रथाओं का विरोध किया। मिशनरियों द्वारा चिकित्सालय, अनाथालय, विद्यालय आदि के अलावा मुद्राणालय की स्थापना किए जाने से क्षेत्रीय साहित्य के प्रचार में मदद मिली। उन्होंने शब्दकोश तैयार किए और क्षेत्रीय साहित्य का अंग्रेजी में अनुवाद किया।

iii) एक नई आर्थिक प्रणाली तथा एक ऐसे संचार–तंत्र का विस्तार जिसने देश को आंतरिक रूप से व शेष विश्व से जोड़ा। उच्च जातियों ने ही अधिकांश शैक्षणिक एवं आर्थिक अवसरों का लाभ उठाया। इससे उच्च और निम्न वर्गों की बीच की खाई और चौड़ी हो गई। अंततोगत्वा, निम्न जातियों के लिए अवसर एवं संसाधनों का प्रग्रहण करने के लिए 'पिछड़ा वर्ग आंदोलन' चलाया गया। वे जो सफल हुए उन्होंने अन्य ऐसे लोगों को प्रोत्साहित किया जो आर्थिक रूप से कमजोर अथवा विषादग्रस्त थे। श्रीनिवास के शब्दों में, 'प्रदर्शन प्रभाव' ने सामाजिक दिशांतों को विस्तार प्रदान किया तथा 'पिछड़ा वर्ग आंदोलन' को उत्साह एवं शक्ति प्रदान की।

iv) नए व्यापार और रोजगार अवसर, यथा सड़क, रेलवे एवं नहर निर्माण कार्य, जिससे पूर्वी उत्तर प्रदेश की नोनिया जाति, गुजराज में सूरत तट पर रहने वाली कोली जाति व अन्य कई जातियों को लाभ हुआ।

v) उच्च जातियों के प्रतीक चिह्न एवं कर्मकांड अपनाने की स्वतंत्रता, जिसने निम्न जातियों को यज्ञोपवीत धारण करने को प्रेरित किया। क्षेत्रीय रूप से प्रभावी जातियों ने इसका विरोध किया, जिसके लिए प्रायः हिंसा एवं आर्थिक बहिष्कार का सहारा लिया गया। ऐसे आंदोलन, बहरहाल, हमेशा सफल नहीं होते हैं क्योंकि पीड़ित व्यक्ति पुलिस के पास शिकायत दर्ज करा देते हैं और अदालत में मुकदमा दायर कर देते हैं; तथा

vi) इस्लाम, ईसाई धर्म, और सिख धर्म व आर्य समाज जैसे पंथों में धर्मांतरण। अनेक धर्मांतरित लोगों ने पाया कि उन्हें लगा हुआ कलंक नए चोले में भी लगा ही है (देखें माथुर, 2020)।

वयस्क मताधिकार और सत्ता प्राप्त करने की संभावनाओं ने स्वतंत्र भारत में आंदोलन के नए मार्ग खोल दिए हैं। प्रभावशाली और अप्रभावी मगर संख्यात्मक रूप से प्रबल जातियों के नेता अत्यधिक प्रभाव रखते व उसका उपयोग करते हैं। जब उनके और शेष

जनसमुदाय के बीच मतभेद गहरे हो जाते हैं तो वे जनसाधारण से अपने संबंध कायम रखने के लिए संघर्ष करते हैं क्योंकि उनकी भव्यता के बिना वे अपनी प्रतिष्ठित स्थिति को बनाए नहीं रख सकते।

किसी भी घटना को ले लें, श्रीनिवास (1968) एक विशिष्ट प्रकार की गतिशीलता का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें जाति की तुलना बड़े शहरों में रहने वाले ऐसे धनाढ्य शिक्षित लोगों के वर्ग से की जाती है जिन्हें ऐसे कार्यकलाप सौंपे गए होते हैं जिनका गाँव में अपने परंपरागत जाति व्यवसाय से किंचित ही वास्ता होता है। ऐसे लोग सरलतापूर्वक मलिनता मानदंडों का उल्लंघन कर सकते हैं, और ऐसे व्यक्तियों से मिल सकते हैं और यहाँ तक कि उनसे विवाह भी कर सकते हैं जो जातिवादी मानकों का पालन नहीं करते हैं। ऐसे उदाहरणों में, जीवनशैली एवं व्यक्तिगत संबंधों में संघटनकारी घटक के रूप में जाति की बजाय वर्ग उभरता है।

आर्थिक पहलू ही लोगों के सामाजिक जीवन पर शासक जाति के प्रभाव का प्रतिकार करता है। जोशी (1996: 138) रामपुरा की स्थिति पर श्रीनिवास की व्याख्या की समीक्षा इन शब्दों में करते हैं – 'तथापि, परिवर्तन की गति बढ़ने ओर गाँव व नगर के एकीकृत होने के साथ ही, ऊर्ध्वमुखी गतिशीलता की संभावना बढ़ने के अलावा, नए अवसरों ने प्रभुत्व जाति के सदस्यों के बीच आर्थिक असमानता की संभावना भी बढ़ा दी। इस संदर्भ में ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों से नवधनाढ्य लोग, तदनुसार किसी प्रबल जगत के सहज गुण त्यागते हुए, एक वर्ग के रूप में उभरे। यहाँ तक कि अपनी स्वयं की पहचान अथवा गाँव के अन्य सदस्यों द्वारा पहचान के साधन स्वरूप भी अब प्रभुत्व जाति का प्रयोजन किसी सार्थक संकल्पना के रूप में नहीं रहा था।' जोशी के अनुसार, *द रिमेम्बर्ड विलेज* लोगों के आर्थिक संघटन को उचित स्थान दे पाने में विफलता से ग्रस्त है।

निम्न जातियाँ उच्च जातियों से प्रेरित होकर ऊर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलता के लिए संघर्ष करती हैं। एक प्रमुख साधन जिसके द्वारा निम्न जातियाँ सामाजिक स्तरीकरण की सीढ़ी चढ़ती हैं, 'संस्कृतीकरण की प्रक्रिया' कहलाती है। श्रीनिवास इस संस्कृतीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में करते हैं – 'कोई भी निम्न जाति एक या दो पीढ़ी में शाकाहार एवं मद्यनिषेध को अपनाकर तथा अपने रीति–रिवाज एवं पूजा–स्थल को संस्कारित कर पदानुक्रम में किसी उच्चतर स्थान तक पहुँचने में सक्षम होती है। संक्षेप में, इस प्रक्रिया ने ब्राह्मणों के रीति–रिवाजों, संस्कारों एवं मान्यताओं को यथासंभव अपने हाथ में ले लिया और फिर भी किसी निम्न जाति द्वारा ब्राह्मणवादी जीवनशैली को अपना लेना सैद्धांतिक रूप से निषिद्ध प्रतीत होता है। इस प्रक्रिया को 'ब्राह्मणीकरण' के स्थान पर 'संस्कृतीकरण' कहा गया है क्योंकि कुछ वैदिक संस्कार ब्राह्मणों व कुछ अन्य द्विज जातियों तक ही सीमित हैं' (1952: 32)। वे मुख्य रूप से दूसरों के बीच ब्राह्मणवादी जीवनशैली का पालन करते थे, यथा कठोर विवाह संहिता, पवित्रता का पालन – मलिनता का निषेध, धार्मिक संकल्प लेना, संस्कृत कथा–कहानियों का वाचन आदि।

श्री निवास (1967) के अनुसार, पारंपरिक व्यवस्था में रहकर कोई भी जाति किसी ऐसी प्रभुत्व जाति के नाम एवं अभिलक्षण को अपना लेती थी जिसे किसी क्षेत्र में सम्मान तो मिलता हो परंतु वह अत्यधिक संस्कृतीकृत न हो। कोई भी जाति महज अपने खान–पान, जीवनशैली एवं रीति–रिवाजों में परिवर्तन लाकर स्वयं को ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य के रूप में स्थापित करना शुरू कर सकती थी। प्रायः ऐसा करना एक या दो पीढ़ियों की अवधि तक जारी रखा जाता था। इसका अर्थ है कि एक या दो पीढ़ियों की अवधि के बाद उस जाति के लोगों को ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वर्ण के लोगों के रूप में पहचान प्राप्त हो सकती थी। यह बात आपको हास्यास्पद रूप से रोचक लग सकती है कि स्वयं को

ब्राह्मणों के समकक्ष मानने वाले लिंगायत किसी ब्राह्मण द्वारा पकाए गए भोजन को खाने से इंकार कर देते थे।

श्रीनिवास द्वारा एक अन्य उदाहरण भी उद्धृत किया गया है, जो कि लिंगायतों से नितांत भिन्न है – यह है दक्षिण भारत की ही स्मिथ जाति। इस जाति के लोग स्वयं को 'विश्वकर्मा ब्राह्मण' कहते हैं। ये यज्ञोपवीत धारण करते हैं और संस्कृतीकरण अपनाते हैं। इस जाति में कुछ लोग मांस–मदिरा का सेवन करना अब तक नहीं छोड़ पाए हैं। इन लोगों की बाध्यता थी कि वे उसी गाँव में विवाह संबंध करेंगे जहाँ उनके इष्ट देवता का मंदिर हो और उनकी बारात उन गलियों से नहीं गुजरेगी जहाँ उच्च वर्ण की जाति के लोग रहते हों। ये लोग लिंगायत जाति के लोगों से इस बात में भिन्न और अनूठे थे कि ये ब्राह्मणों के बराबर होने का दावा कर प्राधारिक पड़ोसियों द्वारा प्रस्तुत पदानुक्रम से बचने का प्रयास करते थे।

श्रीनिवास (1956) संकेत देते हैं कि जहाँ निम्न जाति के लोग उच्च जातियों की नकल कर अपनी सामाजिक स्थिति ऊँची करने का प्रयास करते हैं, वहीं उच्च जातियों के लोग पाश्चात्य जीवनशैली, विचारों एवं उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली आर्थिक उन्नति की संभावनाओं से प्रभावित होते हैं। स्वतंत्रता–पूर्व अवधि में ब्राह्मण वर्ग ही साक्षरता की पंरपरा को नियंत्रित करता था और उसे ही ग्रामीण आर्थिक पदानुक्रम में उच्चतम पद प्राप्त था। ब्रिटिश सत्ता की नींव पड़ने के बाद उन्होंने ही जीवन की पाश्चात्य शैली में उपलब्ध अधिकांश अवसरों का लाभ उठाया। इन पश्चिमीकृत ब्राह्मणों अंग्रेजों और शेष जनसाधारण के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाई। परिणामतः पूर्व व्यवस्था पर एक नया और पंथनिरपेक्ष जाति प्राधार अध्यारोपित कर दिया गया। आश्चर्यजनक रूप से, इस नए व धर्मनिरपेक्ष जाति प्राधार में अंग्रेज व नवक्षत्रिय शीर्ष पर थे, ब्राह्मण द्वितीय, और शूद्र पिरामिड के तल पर रखे गए थे। ब्राह्मण अंग्रेजों को सम्मान देते थे; शेष जन समुदाय ब्राह्मणों और अंग्रेजों को सम्मान देते थे। इस व्यवस्था की जटिलता इस बात में थी कि कुछ ब्रिटिश मान्यताएँ और रीति–रिवाज ब्राह्मणों की मान्यताओं व रीति–रिवाजों एवं लोकाचार से नितांत भिन्न थे।

समकालीन सामाजिक जीवन में संस्कृतीकरण और पश्चिमीकरण दो प्रायः प्रतिस्पर्धी प्रभाव होते हैं। जब ब्राह्मण अधिक पश्चिमीकृत होकर कुछ प्रथाओं का परित्याग कर देते हैं तो निम्न जातियों के लोग उन्हें अपना लेते हैं – मानो इससे उनका जीवन सँवर जाएगा और वे अपने उपयुक्त अन्य लोगों से उन्नत समझे जाएँगे।

10.3.7 सामुदायिक विकास और राष्ट्र–निर्माण

भारत में पश्चिमीकृत अभिजात वर्ग पश्चिमी अवधारणाओं और मूल्यों का समर्थन करता है। इन्हीं का उपयोग हमारे अपने देश के मामलों की स्थिति को समझने के लिए किया जाता है। स्वतंत्र भारत में राष्ट्र–निर्माण पर ध्यान केंन्द्रित करते हुए श्रीनिवास ने देशभर के बारे में निष्कर्ष निकालने में राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिरता की जटिलता की उपेक्षा किए जाने के लिए देश के सामाजिक वैज्ञानिकों को उत्तरदायी माना। उनके अनुसार, सामाजिक वैज्ञानिकों के निष्कर्ष अपर्याप्त अस्पष्ट आँकड़ों के आधार पर निकाले गए थे। उन्होंने देश की विशालता एवं विविधता संबंधी तथ्यों के आलोक में राष्ट्र–निर्माण में सफलता का कीर्तिगान नहीं किया। वह समाज सुधार की दिशा में अपनी प्रतिबद्धता हेतु पश्चिमीकृत अभिजात वर्ग के महत्व का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार, यह वर्ग देश के लिए सरकार के रूप में संसदीय लोकतंत्र की दिशा में संघर्ष करता है। इस प्रकार यह राष्ट्र–निर्माण में योगदान देता है।

श्रीनिवास भारत में राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया में शामिल आधारभूत तत्वों को निम्नवत् प्रस्तुत करते हैं – (i) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए संरक्षा भेदभाव, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि संवृद्धि एवं विकास हेतु अवसर सामाजिक एवं वास्तविक रूप से वंचित वर्ग तक पहुँचें; (ii) एक सूचना–तंत्र के रूप में लोकतंत्र, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की माँग व आवश्यकताओं को नीति–क्रियान्वयन में प्रशासनिक कार्यवाही के प्रभावों के साथ सत्तासीन लोगों के ध्यान में लाया जाता है। लोकतंत्र के प्रभावी कामकाज के लिए एक स्वतंत्र पर उत्तरदायी प्रेस अनिवार्य होता है; (iii) राजनीतिक शिक्षा एवं विकेंद्रीकरण न केवल राजनीति के क्षेत्र में अपितु प्रशासन एवं उद्योग के क्षेत्रों में भी; (iv) धर्म, भाषा एवं संस्कृति के मामलों में बहुलवाद की नीति; (v) नृजातीयता, सांप्रदायिकता, भाषाई चेतना एवं क्षेत्रवाद के रूप में उप–राष्ट्रवाद, जो कि वंशानुगत समूहों के लोगों को एक साथ लाता है, जिनमें से अनेक समूह क्षेत्रीय एवं राज्यीय स्तरों पर दबाव समूहों के रूप में कार्य करते हैं, जिसकी वजह से उनके नेता राजनीतिक सत्ता एवं आर्थिक लाभ हासिल करने में सक्षम हो जाते हैं। उप–राष्ट्रवाद और अतिशय राष्ट्रवाद का खतरा चिरस्थायी है; तथा (vi) पंथनिरपेक्षता अथवा धर्मनिरपेक्षता यह सुनिश्चित करते हुए कि हर धर्म के सदस्यों को एक ओर अपनी आस्था को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करने, व्यवहार में लाने व उसका प्रचार करने की अनुमति है, और किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा (माथुर, 2020)।

श्रीनिवास (1977) भारतीय समाज के वृहत्तर प्राधार में शहरी मध्य वर्ग और ग्रामीण निर्धन वर्ग पर केंद्रित अनेक संस्कृतियों का वर्णन करते हैं। उन्होंने इन दो वर्गों के बीच संबंध पर खास जोर दिया है। यह संबंध भारत की अर्थव्यवस्था, राजनीति, समाज और लोगों के विश्व–दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। शहरी मध्य वर्ग में उच्च एवं मध्यम जातियों के साथ–साथ अल्पसंख्यक समूहों की ऊपरी परत भी शामिल है।

उच्च मध्य वर्ग के लोग बड़ी संख्या में सरकारी अधिकारियों, अनेक क्षेत्रों में पेशेवरों व अन्य व्यवसायियों के रूप में कार्यरत हैं। वे शक्तिशाली तो हैं परंतु राजनीतिक अभिजात वर्ग के प्रति दब्बू ही देखे जाते हैं। राजनीतिक अभिजात वर्ग शहरी मध्य वर्ग के सदस्यों को प्रसन्न रखने का प्रयास करता रहता है। इससे प्रशासनिक तंत्र की कार्रवाई सुचारु बनी रहती है। दूसरी ओर, निर्धन वर्ग मुख्यतः कृषक वर्ग है। ये किसान अधिकांशतः अपनी क्षेत्रीय भाषा में ही संवाद करते हैं। ये उस शहरी मध्य वर्ग के प्रति श्रद्धायुक्त भय का भाव रखते हैं जो अंग्रेजी बोलने में सक्षम होता है।

दरिद्रता के साथ–साथ शहरी मध्य वर्ग सरीखी शक्ति के अभाव के बावजूद ग्रामीण जनसामान्य राजनीतिज्ञों का लक्ष्य–समूह कहलाता है क्योंकि वह एक बड़ा 'वोट बैंक' होता है। प्रभुत्व संपन्न एवं उच्च जातियों के भू–स्वामी परिवार इन दो वर्गों के बीच एक सामरिक स्थिति रखते हैं। ये अधिकारी–तंत्र व अन्य व्यवसायों में अपना प्रचुर प्रतिनिधित्व होने से राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से प्रभावशाली कहलाते हैं। ये निम्न जातियों के विषादग्रस्त लोग, भूमिहीन लोग और अधिकारहीन लोग ही होते हैं। ये मुख्यतः उच्च मध्य वर्ग में शामिल होने के साथ–साथ ग्राम्य गतिविधियों को नियंत्रित करने का भी प्रयास करते रहते हैं।

राजनेता वोट के लिए, विशेष रूप से चुनावों के नजदीक होने पर, ग्रामीण संरक्षकों से ही संपर्क करते हैं। इस अवसर पर ये ग्रामीण सरपरस्त बसों, चावल मिलों व अन्य व्यवसायों के लिए लाइसेंसों के साथ–साथ अपने संबंधियों के लिए चिकित्सा एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालयों में सीटें भी माँग लेते हैं। शाह (2000: 631) कहते हैं – 'एक बार मध्य वर्ग की प्रस्थिति प्राप्त हो जाने पर यहाँ तक पहुँच जाने वाले इस प्रस्थिति को कायम रखने के लिए एड़ी–चोटी का जोर लगा देते हैं, और आगे भी बढ़ते हैं। इसमें मंदिरों में जाकर, तीर्थ–यात्राओं पर जाकर, तथाकथित 'चमत्कारी' बाबाओं के पास जाकर और ज्योतिषियों से परामर्श करके नए सरोकार एवं चिंताओं का निदान करना शामिल होता है।

ऐसा करके जीवन–चक्र संस्कार और जटिल हो जाते हैं तथा शाकाहार, योग एवं ध्यान संस्कृतीकृत जीवनशैली का हिस्सा बन जाते हैं। इसके साथ ही, जन्मदिवस एवं विवाह की वर्षगाँठ प्रीतिभोज, मद्यपान, केक कटाई आदि के साथ पाश्चात्य शैली में मनाए जाने लगते हैं। पंथनिरपेक्षता के मोर्चे पर, बच्चों को बढ़िया स्कूलों में भर्ती करवाना, अध्ययन के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश का प्रयास करना और ध्यानाकर्षी उपभोक्तावाद महत्वपूर्ण जीवन–लक्ष्य बन जाते हैं।

श्रीनिवास को प्रभुत्व जातियों और दलित (जिन्हें पहले 'अस्पृश्य' कहा जाता था) वर्ग के बीच तनाव एवं संघर्ष का भान था। सरकार की अधिमान्य नीतियों ने दलितों को उच्च जातियों के वर्चस्व को चुनौती देने लायक बना दिया है। अपना 'वोट बैंक' तैयार करने की गरज से राजनेता दलितों और उच्च जातियों दोनों को लुभाने का यत्न करते हैं। अपनी उत्पत्ति के दशकों बाद भी 'वोट बैंक' संबंधी श्रीनिवास की अवधारणा समकालीन युग में प्रासंगिक हैं। प्रभावशाली ग्रामीण अभिजात वर्ग सामुदायिक विकास परियोजनाओं से प्राप्त लाभ ले जाता है, जबकि अधिकारहीन वर्ग प्रतीक्षा ही करता रह जाता है। इससे इन दो समूहों के बीच की खाई और चौड़ी हो जाती है।

श्रीनिवास (1962) के अनुसार, जब और अधिक ग्रामीण निर्धन जन को यह लगता है कि उनके हिस्से को बढ़ाने वाले विकास कार्यक्रमों का लाभ उन्हें नहीं मिल रहा है तो संघर्ष बढ़ता है। आगे भी उनका यही कहना है कि भविष्य में उच्च जातियों और हरिजनों के बीच तनाव बढ़ने वाला ही है। पंचायती राज में प्रभुत्व संपन्न जातियों की स्थिति में सुधार हुआ। इस नई स्थिति का प्रयोग इन जातियों द्वारा उन लोगों को अपने अधीन करने के लिए किया गया जो एक लम्बे समय से उनकी सेवा करते आए थे और अब आजाद होना चाहते थे।

लेखक का यह भी मानना है कि शहरी अभिजात वर्ग इन परिवर्तनों को तब तक नहीं देख पाएगा जब तक कि वे किसी महत्वपूर्ण बिंदु पर नहीं पहुँच जाते। शिक्षा के स्तर में बढ़ोतरी का संबंध लोगों के मूल्यों एवं व्यवहार में परिवर्तन से जोड़ा जा सकता है। शिक्षा तर्क, समयनिष्ठा एवं अनुशासन पर अधिक बल के साथ कृषक से निकलकर औद्योगिक संस्कृति अपना लेने की सुविधा देकर आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देती है।

श्रीनिवास का मानना था कि सामाजिक मानवविज्ञानी और समाजशास्त्री मात्र इसलिए भारत व चीन की उपेक्षा नहीं कर सकते कि वे भूक्षेत्र, जनसंख्या एवं सांस्कृतिक समृद्धि के लिहाज से भिन्न हैं, बल्कि इसलिए भी कि विश्व शक्तियों के रूप में उभर रहे हैं। भारत में स्थानीय स्वशासन में सत्ता के विकेंद्रीकरण और महिलाओं व जनसमुदाय के वंचित वर्गों के आरक्षण संबंधी जुड़वाँ परिघटनाओं ने दुनियाभर के सामाजिक वैज्ञानिकों की रुचि को आकर्षित किया है (देखें श्रीनिवास, 1966, 1997, 2000)।

बोध प्रश्न 2

1. एम.एन. श्रीनिवास कृत *द रिमेम्बर्ड विलेज* संबंधी, पी.सी. जोशी की समीक्षा की व्याख्या करें।

   ……

   ……

   ……

   ……

2. श्रीनिवास द्वारा उल्लिखित राष्ट्र–निर्माण के मूलभत तत्वों की सूची प्रस्तुत करें।

   ……

   ……

   ……

   ……

10.4 महत्वपूर्ण कृतियाँ

एम.एन. श्रीनिवास की कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ निम्नलिखित हैं –

1. *मैरिज एंड फैमिली इन मैसूर* (1942)
2. *रिलीजन एंड सोसाइटी अमंग द कूर्ग्स ऑफ साउथ इंडिया* (1952)
3. *कास्ट इन मॉडर्न इंडिया एंड अदर एसेज* (1962)
4. *सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया* (1966)
5. *द रिमेम्बर्ड विलेज* (1976)।

10.5 सारांश

इस इकाई में हमने एम.एन. श्रीनिवास के जीवन एवं कृतित्व के विषय में जाना। इकाई का आरंभ हमने उस सामाजिक एवं शैक्षणिक परिवेश की समझ विकसित करने के साथ किया जिसमें उनके विचारों का विकास हुआ। जी.एस. घुर्ये, रैडक्लिफ–ब्राउन और इवांस–प्रिचर्ड के मार्गदर्शन में उनके प्रशिक्षण का प्रभाव व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति से संबंधित उनके विचारों में स्पष्ट देखा जा सकता है।

श्रीनिवास में भारतीय सामाजिक वास्तविकता को समझने के लिए स्वदेशी अवधारणाएँ विकसित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया। हमने मुख्य रूप से संरचनात्मक प्रकार्यवाद, भारत में गाँव, जाति व्यवस्था एवं सामाजिक गतिशीलता से संबद्ध उनकी मुख्य अवधारणाओं पर चर्चा की। उनका लेखन एवं कार्य उस समय के समाज की समग्र एवं विशद व्याख्या प्रस्तुत करता है।

10.6 संदर्भ

बैन्स, ए. (1912), *एथ्नोग्राफी*, स्ट्रॉसबर्ग : ट्रबनेर वर्लैग।

इवांस–प्रिचर्ड, ई.ई. (1951), *सोशल एंथ्रोपोलॉजी*, लदंन : कोहेन एंड वेस्ट।

फुलर क्रिस. (1999), 'एन इंटरव्यू विद एम.एन. श्रीनिवास', *एंथ्रोपोलॉजी टुडे*, 15, 15।

जोशी पी.सी. (1996), 'द रिमेम्बर्ड विलेज : इनसाइट्स इन ए एग्रेरियन सिविलाइजेशन', ए.एम. शाह, बी.एस. बाविस्कर एवं ई.ए. रामास्वामी (सं.), *सोशल स्ट्रक्चर एंड चेंज, खंड–1: थ्योरी एंड मेथड – एन इवैल्यूएशन ऑफ द वर्क ऑफ एम. एन. श्रीनिवास* में, नई दिल्ली : सेज।

खरे, आर.एस. (1996), 'सोशल डिस्क्रिप्शन एंड सोशल चेंज : फ्रॉर्म फंक्शन टु क्रिटिकल कल्चरल सिग्नीफिकेशन्ज', ए.एम. शाह, बी.एस. बाविस्कर एवं ई.ए. रामास्वामी (सं.), *सोशल स्ट्रक्चर एंड चेंज*, खंड–1: *थ्योरी एंड मेथड – एन इवैल्यूएशन ऑफ द वर्क ऑफ एम.एन. श्रीनिवास* में, नई दिल्ली : सेज।

माथुर, नीता (2020), 'द रिमेम्बर्ड एंथ्रोपोलॉजिस्ट : एंगेजिंग विद द इनसाइट्स ऑफ एम.एन. श्रीनिवास', *जर्नल ऑफ द एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया*, 69 (2): 224–240, 2020।

शाह, ए.एम. (1996), 'एम.एन. श्रीनिवास : द मैन एंड हिज वर्क', ए.एम. शाह, बी.एस. बाविस्कर एवं ई.ए. रामास्वामी (सं.), *सोशल स्ट्रक्चर एंड चेंज*, खंड–1: *थ्योरी एंड मेथड – एन इवैल्यूएशन ऑफ द वर्क ऑफ एम.एन. श्रीनिवास* में, नई दिल्ली : सेज।

श्रीनिवास, एम.एन. (1961), चेंजिंग एटिट्यूड्स इन इंडिया टुडे', *योजना*, विशेषांक, 1 अक्तूबर : 25–28।

श्रीनिवास, एम.एन. (1966), *सोशल चेंज इन मॉर्डन इंडिया, बर्कली*, कैलिफोर्निया : यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

श्रीनिवास, एम.एन. (1968), 'मॉबिलिटी इन कास्ट सिस्टम', मिल्टन सिंगर एवं बर्नाड कोहन (सं.), *स्ट्रक्चर एंड चेंज इन इंडियन सोसाइटी* में, शिकागो : यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस।

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. श्रीनिवास द्वारा रैडक्लिफ–ब्राउन के संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की समालोचना मुख्यतः निम्नलिखित बिंदुओं पर आधारित है – (i) सभ्यता की प्रकार्यात्मकता में ऐतिहासिक साक्ष्य की उपेक्षा तथा (ii) सामाजिक नियमों की तुलना वैज्ञानिक नियमों से करना व्यर्थ था। अतः श्रीनिवास ने सामाजिक कामकाज में ऐतिहासिक आँकड़ों की आवश्यकता और अंतर्निहित संरचनात्मक प्रकार्यवाद के सिद्धांतों की निरर्थकता को मान्यता देना शुरू किया।
2. श्रीनिवास के अनुसार, एक भारतीय मानवशास्त्री जो 'सेल्फ–इन–द–अदर' अर्थात् 'अन्य में स्वयं' का अध्ययन करता है, वह किसी ऐसे व्यक्ति का अध्ययन कर रहा होता है जो कोई अन्य व्यक्ति है, और साथ ही, कोई ऐसा व्यक्ति भी जिसके साथ उसके सांस्कृतिक स्वरूप, मान्यताएँ एवं मूल्य एक ही स्तर पर हैं। भारत में सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता की प्रकृति एवं विस्तृति के साथ भाषा, बोली, धर्म, पंथ, जाति, वर्ग एवं नस्ल में भिन्नताएँ भारतीय मानवशास्त्रियों को हर मोड़ पर चुनौती देती हैं। अतः वे 'अन्य' को निकटवर्ती झोंपड़–पट्टी, जनजाति अथवा पिछड़ी मलिन बस्ती में तलाश सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

1. पी.सी. जोशी के अनुसार, *द रिमेम्बर्ड विलेज* लोगों के आर्थिक संघटन को उचित स्थान दिए जाने की विफलता से ग्रस्त है। आर्थिक गतिविधियों की उपेक्षा करने की व्यापक प्रवृत्ति भारत में जाति की व्यापक व्याख्या को ढक लेती है।

2. श्रीनिवास ने भारत में राष्ट्र–निर्माण के निम्नलिखित तत्वों को सूचीबद्ध किया है – (i) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों के लिए संरक्षी भेदभाव; (ii) लोकतंत्र; (iii) राजनीति, प्रशासनिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में राजनीतिक शिक्षा एवं विकेंद्रीकरण; (iv) धर्म, भाषा एवं संस्कृति के मामलों में बहुलवाद की नीति; (v) उप–राष्ट्रवाद; तथा (अप) पंथनिरपेक्षिता अथवा धर्मनिरपेक्षता।